एक धर्म का ही अवलम्बन

हे धर्म के इच्छुक धर्मानुरागी ! सुनो !! यह मनुष्यभव, उसमें उत्तमकुल, इन्द्रियों की शक्ति, धर्म का लाभ ह्न ये सब बहुत दुर्लभ चीजें मिली हैं। इनका वियोग हो जाने के बाद पुन: इनका मिलना अनंतकाल में भी कठिन है। इसलिये कर्म के उदय से मिले रोग, वियोग, दारिद्रादि के दुखों से कायर होकर आर्त्तपरिणामी होना योग्य नहीं है। दु:खी होने पर कर्म का अधिक बंध होगा।

कायर होकर भोगोगे तो भी कर्म नहीं छोड़ेगा और धीरवीरपने से भोगोगे तो भी कर्म नहीं छोड़ेगा। दुर्गति की कारण यह कायरता है, उसे धिक्कार हो। आप तो अब साहस धारण करो।

मनुष्य जन्म का फल तो धीरता तथा संतोषव्रत सहित धर्म का सेवन करके आत्मा का उद्धार करना है। यह मनुष्य शरीर तो रोगों का घर है, इसमें रोग उत्पन्न होने का क्या आश्चर्य है ? यहाँ तो धर्म ही शरण है। रोग तो उत्पन्न ही होगा, संयोग है; वह वियोग सहित ही होता है। किन-किन पुरुषों पर दु:ख नहीं आये ? अत: अपना साहस धारण करके **एक धर्म का ही अवलम्बन ग्रहण करो**।

जो-जो वस्तुयें उत्पन्न होती हैं, वे सभी विनाश सहित हैं। इस शरीर का ही वियोग होना है तो जो अन्य सभी अपने-अपने कर्म के उदय के आधीन उत्पन्न होते हैं और मरते हैं, वे उत्पन्न होंगे और मरेंगे, उनका हर्ष-विषाद करना वृथा है और बंध का कारण है।

ह्न रत्नकरण्ड श्रावकाचार, पृष्ठ : 32

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का, घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 21 | 250 | अंक : 10

प्रवचनसार पद्यानुवाद

ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार

सप्रदेशी अप्रदेशी मूर्त और अमूर्त को।
अनुत्पन्न विनष्ट को जाने अतीन्द्रिय ज्ञान ही।।41।।
ज्ञेयार्थमय जो परिणमे ना उसे क्षायिकज्ञान हो ।
कहें जिनवरदेव कि वह कर्म का ही अनुभवी।।42।।
जिनवर कहें उसके नियम से उदयगत कर्मांश हैं ।
वह राग-द्वेष-विमोह बस नित बंध का अनुभव करे।।43।।
यत्न बिन ज्यों नारियों में सहज मायाचार त्यों।
हो विहार उठना-बैठना अर दिव्यध्वनि अरहंत के।।44।।
पुण्यफल अरिहंत जिनकी क्रिया औदयिकी कही।
मोहादि विरहित इसलिए वह क्षायिकी मानी गई।।45।।
यदी स्वयं स्वभाव से शुभ-अशुभरूप न परिणमें।
तो सर्व जीवनिकाय के संसार भी न सिद्ध हो।।46।।
जो तात्कालिक अतात्कालिक विचित्र विषम पदार्थ को।
चहुं ओर से इक साथ जाने वही क्षायिक ज्ञान है।।47।।
जाने नहीं युगपद् त्रिकालिक अर्थ जो त्रैलोक्य के ।
वह जान सकता हैं नहीं पर्यय सहित इक द्रव्य को।।48।।

ह्न डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

जिसके पास जो होता है, वह वही देता है

पूज्यपाद आचार्य श्री देवनन्दि के प्रसिद्ध ग्रन्थ इष्टोपदेश के 23 वें श्लोक पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल श्लोक इसप्रकार है –

अज्ञानोपास्तिरज्ञानं ज्ञानं ज्ञानिसमाश्रयः।
'ददाति यत्तु यस्यास्ति' – सुप्रसिद्धमिदं वचः ।।23।।

अज्ञान अर्थात् ज्ञानरहित शरीरादि की उपासना से अज्ञान की प्राप्ति होती है और ज्ञानी पुरुषों की सेवा से ज्ञान की प्राप्ति होती है; क्योंकि जिसके पास जो होता है, वह वही देता है – यह बात सुप्रसिद्ध है।

(गतांक से आगे .....)

अब अज्ञानियों की बात कहते हैं ह्न जिन्हें अपनी आत्मा का ज्ञान नहीं है, स्वरूप के विषय में भ्रान्ति है और जो शरीर की क्रिया से या पुण्य-पाप से लाभ मानते हैं; ऐसे भ्रमसहित व्यामोह चित्तवाले अज्ञानी हैं और ऐसे अज्ञानी गुरु की सेवा करने से अज्ञान की ही प्राप्ति होती है।

अज्ञान के तीन दोष हैं ह्न मोह, भ्रम और संदेह। अज्ञानी गुरु स्वयं इन दोषों से सहित हैं, इसलिए दूसरों को भी इन्हीं दोषों की पुष्टि कराते हैं। ऐसे अज्ञानी गुरु की वाणी सुनने से उसमें एकाग्रता करने से सुननेवाले को भी अज्ञान की ही प्राप्ति होती है।

सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग देव तो कहते हैं कि आत्मा वीतराग-स्वरूप है, उसमें एक समय में वीतरागता प्राप्त करने की शक्ति/योग्यता है। प्रत्येक आत्मा में पूर्ण वीतरागस्वरूप होने की शक्ति है। वह लोकालोक को जाननेवाले स्वभाव की सत्ता धारण करनेवाला है, ऐसे आत्मा की प्राप्ति ज्ञानी के पास से ही संभव है।

अज्ञानी गुरु तो सभी बातें उल्टी ही कहते हैं। आत्मा के नाम से स्वयं भ्रमते हैं और दूसरों को भी भ्रम उत्पन्न कराते रहते हैं।

भगवान आत्मा सहजानन्द मूर्ति प्रभु के अन्त:स्वभाव का साधन अन्तरंग में विद्यमान है, उसे अन्य साधन की आवश्यकता नहीं है। निर्विकल्प सत्ता, ज्ञान, शांति के साधन से ही स्वभाव की प्राप्ति होती है।

यह सब पूज्यपादस्वामी लिखकर गये हैं। उन्होंने सम्पूर्ण केवलज्ञान का स्वरूप स्पष्ट किया है। वे धर्म में पारंगत संत थे। उनकी एक-एक गाथा और शास्त्र की एक-एक बात साक्षात् सिद्धों की बात है। ऐसी वाणी दिगम्बर संतों के अलावा अन्यत्र कहीं नहीं हो सकती। उन्होंने केवलज्ञान को तो हथेली में ही ले लिया है, मानो अल्पकाल में ही केवलज्ञान प्रकट करने का अनुभव प्राप्त है।

पूज्यपादस्वामी, पद्मनंदी आचार्य इत्यादि धर्म के धारी महान संत शंखनाद करते हुए कहते हैं कि - हे भाई ! एकबार ! सुनले रे, सुनले ! तुम्हारी वीतराग शांति का साधन तुम्हारे में ही है। बापू ! वीतरागी संत तुझे वीतरागता की बात कहते हैं। जो राग से लाभ मानते हैं, वे वीतरागी संत नहीं है। वीतरागता के साधक ही वीतरागता बताते हैं।

प्रभु ! निर्वाणनाथ हैं, मोक्ष के स्वामी हैं। स्त्री-पुत्र-धन इत्यादि के स्वामी नहीं हैं। भाई ! तू भी तेरा स्वामीपना स्वीकार कर। भगवान आत्मा अर्थात् 'चैतन्य सूर्य'। उस चैतन्य सूर्य की सेवा करने से 'चैतन्य सूर्य' पर्याय में प्रकट होता है। ज्ञान की जागृतदशा अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय में प्रगट होता है।

ज्ञानस्वरूप निजात्मा या आत्मज्ञानसम्पन्न पुरुष की तत्परता सहित सेवा करने से ज्ञान प्रगट होता है, ज्ञान के साथ ही अनन्त गुणों की भी प्राप्ति होती है। ज्ञानी पुरुष क्या कहता है, क्या करना चाहता है ? ऐसे अभिप्राय को पकडने की तत्परता सहित सेवा से स्व-अर्थ व बोधरूप ज्ञान अर्थात् स्वयं ज्ञानस्वरूप आत्मा का सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है।

देह-देवल में विराजमान भगवान आत्मा अरूपी होने पर भी स्वरूपी है, अनादि-अनंत वस्तु है; उसमें अनंत ज्ञान-आनंद आदि गुण वस्तुरूप/शक्तिरूप/स्वभावरूप में शाश्वत विराजमान हैं।

यहाँ श्री गुरु कहते हैं प्रभु ! तुम उसकी तरफ ध्यान दो। दूसरे/बाह्य पदार्थों की ओर ध्यान मत दो।

ज्ञानी आशीर्वाद देते हैं कि तुम तुम्हारी आत्मा की वीतरागता को पहिचानो, निर्दोष चैतन्यमूर्ति भगवान को जानो और अनुभव करो।

प्रभु ! तुम महान हो, तुम्हारा स्वरूप महान है; तुम अखण्ड आनन्द से भरे हुए प्रभु हो ह्न उसका ज्ञान करो। जिसप्रकार लेंडीपीपर में चौंसठपुटी तीखापन दाने-दाने में भरा हुआ है, उसीप्रकार आत्मा के दाने-दाने में, प्रदेश-प्रदेश में परिपूर्ण ज्ञान और आनन्द भरा हुआ है, उसका ज्ञान कर।

प्रश्न : ज्ञान की सेवा करने से ज्ञान मिले और **ज्ञानी** की सेवा करने पर भी ज्ञान ही मिले - ऐसा कैसे ?

उत्तर : ज्ञानी अर्थात् रागरहित चैतन्यमूर्ति। यहाँ ज्ञानी का अर्थ शरीरवाला या रागवाला ज्ञानी नहीं है। यहाँ तो ज्ञानस्वरूप ज्ञानी को पहिचानने की बात है। जो उसे पहिचानता है, उसे ही ज्ञान और मोक्ष होता है।

जीव को स्वयं के स्वरूप की महिमा नहीं है । जैसे बीडी के ठूंठ में अथवा मीठी दाल के प्राप्त होनेरूप अनुकुल संयोग में महिमा मानकर संतोष प्राप्त करता है; वैसे ही एक बार स्वभाव की ओर दृष्टि करे और उसकी महिमा आ जाए तो फिर परद्रव्य की और देखे भी नहीं। परवस्तुओं की महिमा तो उसे कभी न आये।

लोगों को ऐसा लगता है कि इस लकड़ी में जादू है, इससे सब पैसेवाले हो जायेंगे। पर भाई ! जादू तो चैतन्य में है, पूर्ण आनंद का नाथ तू स्वयं है, तो फिर बाह्य संयोगों में कहाँ सुख ढूँढने जाता है ? वहाँ सुख है ही नहीं तो प्राप्त कहाँ से होगा।

अहाहा ! दो और दो चार जैसी स्पष्ट बात है। ये कोई पक्ष की बात नहीं है। पूज्यपादस्वामी ने तो कम शब्दों में भाव भर दिया है।

बनारसीदासजी बंधाधिकार में लिखते हैं कि कोई मनुष्य भगवान की मूर्ति बनाकर पूजते हैं, कोई पहाड के ऊपर चढ़कर भगवान को भजते हैं, कोई

आसमान पर तो कोई जमीन के नीचे भगवान को ढूँढता है, पर मुझे मेरा भगवान मेरे स्वयं में ही स्पष्ट दिखाई देता है। मेरा भगवान कहीं दूसरे देश में नहीं गया। मेरे पास ही है, उसको मैं भजता हूँ और अनुभव करता हूँ।

जिसकी सभी ज्ञानी अनुमोदना करते हैं –ऐसा सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र आत्मा के आश्रय से प्रगट होता है और उसका फल अविनाशी केवलज्ञान है। वह एक बार प्रगट हुआ तो फिर पुन: उसका नाश होनेवाला नहीं है। इसलिए कहते हैं अविनाशी की सेवा से अविनाशी पर्याय प्रगट होती है।

अरे ! यह तो मोह का माहात्म्य है कि यह भगवान चिदानंद को नहीं ढूँढता है। यह सब मोह की महिमा है। भगवान चैतन्यमूर्ति स्व–सन्मुख रुचि और परिणति तो प्रकट करता नहीं है और शरीर, वैभव तथा पुण्य–पाप की रुचि करता है। ऐसा मानता है यह सब अनुकूल हो तो सही, शरीर निरोगी हो तो ठीक है तथा पुण्य करने से परम्परागत धर्म होता है, लौकिक में सभी अनुकुलताएँ हो तो धर्म हो सकता है। ऐसी विपरीत मान्यतावाले को चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा के दर्शन कैसे हो ?

चैतन्यदेव की स्व–सन्मुखता कर स्वभाव के श्रद्धा–ज्ञान में विचरण करें तो आत्मा की शांति और वीतरागता का उत्तम फल तुरन्त ही प्राप्त हो; क्योंकि चैतन्यराजा की सेवा से चैतन्य की प्राप्ति का फल मिलता है।

हे भद्र ! ज्ञानी की उपासना करके जिसको स्व–पर विवेकरूपी ज्योति प्रकट हुई है – ऐसे आत्मा को आत्मा के द्वारा आत्मा में ही निरन्तर अनुभव करना योग्य है; इसलिये तू रागादि रहित निर्मल आत्मा द्वारा निरन्तर अनुभव कर।

श्रीमद् राजचन्द्रजी कहते हैं कि 'जिसे अन्य कोई शरण नहीं हो, उसे एकमात्र भगवान आत्मा ही शरण है।' पर यह तो निमित्त की ओर से कथन है, निश्चयनय से देखा जाये तो शरण देनेवाला स्वयं चिदानन्द भगवान आत्मा है, उसकी पहचान करके उसमें ही एकाग्रता कर ! **(क्रमश:)**

मोक्ष और मोक्ष का उपाय

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार की चौथी गाथा पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथा मूलत: इसप्रकार है –

णियमं मोक्खउवायो तस्स फलं हवति परम णिव्वाणं।
एदेसिं तिण्ह पि य पत्तेय परूवणा होई ।।4।।

रत्नत्रयरूप नियम मोक्ष का उपाय है; उसका फल परम निर्वाण है। इन तीनों का भेद करके भिन्न–भिन्न निरूपण होता है।

(गतांक से आगे .....)

सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र ह्न तीनों ही आत्मा में अभेदरूप से वर्त रहे हैं; किन्तु समझाने के लिये उन तीनों का भेद करके वर्णन करेंगे। जिन्हें सच्चे देव–शास्त्र–गुरु की श्रद्धा नहीं है, उन्हें तो व्यवहार सम्यग्दर्शन भी नहीं है। सच्चे देव–शास्त्र–गुरु को पहिचाने और उनसे विरुद्ध अन्य को न माने, तब तो व्यवहार श्रद्धा हुई कही जायेगी। वह व्यवहार श्रद्धा भी पुण्य का कारण है। मोक्ष का कारण तो चैतन्यस्वभाव की राग रहित श्रद्धा–ज्ञान–रमणता ही है। उनमें से प्रत्येक का अलग–अलग स्वरूप आगे की गाथाओं में कहेंगे।

अब चौथी गाथा की टीका पूर्ण करते हुये श्लोक कहते हैं –

मोक्षोपायो भवति यमिनां शुद्धरत्नत्रयात्मा
ह्यात्मा ज्ञानं न पुनरपरं दृष्टिरन्याऽपि नैव।
शीलं तावन्न भवति परं मोक्षुभि: प्रोक्तमेतद्
बुद्ध्वा जन्तुर्न पुनरुदरं याति मातु: स भव्य: ।।11।।

मुनियों को मोक्ष का उपाय शुद्धरत्नत्रयात्मक आत्मा है। ज्ञान इससे कुछ अन्य नहीं है तथा दर्शन व शील (चारित्र) भी इससे कुछ अन्य नहीं है; ऐसा मोक्ष प्राप्त करनेवालों (अरहन्त भगवन्तों) ने कहा है। ऐसा जानकर जो भव्यजीव माता के

उदर में पुन: नहीं आता, वह भव्य है।

मुनि निर्ग्रन्थ होते है। मात्र बाह्य निर्ग्रन्थता ही नहीं; किन्तु अन्तर में मिथ्यात्व तथा राग-द्वेष के परिग्रह से भी रहित अभ्यन्तर निर्ग्रन्थता सहित होते हैं और बाहर में वस्त्रादि परिग्रहरहित नग्न दिगम्बर दशा होती है। ऐसे मुनिवरों को रत्नत्रयात्मक शुद्ध आत्मा मोक्ष का उपाय है।

क्षेत्र, मकान, चाँदी, सोना, धन, धान्य, दासी, दास, कपड़ा तथा बर्तन ह्न यह दस प्रकार का बाह्य परिग्रह है। एक मिथ्यात्व, चार कषाय और नौ नोकषाय यह चौदह प्रकार का अभ्यन्तर परिग्रह है। मुनिदशा बाह्याभ्यन्तर परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ होती है। अन्दर में विपरीत श्रद्धा पड़ी हो उसके तो मिथ्यात्व का महान परिग्रह पड़ा है, उसे मुनिदशा कैसे हो सकती है ? जिसकी प्ररूपणा विपरीत हो, पुण्य से धर्म और निमित्ताश्रय से लाभ होना बताता हो; उसके तो अन्दर से मिथ्यात्व का परिग्रह भी नहीं छूटा है अर्थात् सम्यग्दर्शन भी नहीं है, उसे निर्ग्रन्थ नहीं कहते।

अन्तर में चैतन्यस्वभाव के आश्रय से ही धर्म है, ऐसे चैतन्यस्वभाव की श्रद्धा से जिसने मिथ्यात्व का परिग्रह छोड़ा है और उसमें लीनता से जिसने रागादि परिग्रह भी छोड़ा है तथा बाह्य में वस्त्रादि परिग्रह जिसके सहज ही छूट गये हैं - ऐसे मुनि को निर्ग्रन्थ कहते हैं। ऐसे हजारों निर्ग्रन्थ सन्त मुनि वर्तमान में महाविदेह में विराज रहे हैं। कुन्दकुन्द भगवान वहाँ गये थे, उनको भी ऐसी ही निर्ग्रन्थ मुनिदशा थी।

ऐसे मुनियों को मोक्ष का कारण क्या है ? रत्नत्रयरूप से परिणमित निज अभेद आत्मा ही मोक्ष का उपाय है। अभेद रत्नत्रयपने परिणमित आत्मा ही मोक्षमार्ग है और भेद करके कहें तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है; किन्तु व्यवहार-रत्नत्रय तो शुभराग है, वह मोक्षमार्ग नहीं है।

चैतन्यबिम्ब ज्ञानानन्द सूर्य भगवान आत्मा है - उसकी प्रतीति, ज्ञान और रमणतारूप परिणमित आत्मा ही मोक्ष का उपाय है; रत्नत्रयरूप परिणमित आत्मा ही दर्शन-ज्ञान और चारित्र है। ज्ञान आत्मा से भिन्न नहीं है, जो सम्यग्ज्ञान प्रकट हुआ वह आत्मा से भिन्न नहीं है, आत्मा स्वयं तद्रूप परिणमित हो गया है।

सम्यग्दर्शन भी आत्मा से भिन्न नहीं, वह भी आत्मा में अभेद है और सम्यक्चारित्र भी इस आत्मा से भिन्न नहीं है अर्थात् दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों आत्मा में अभेद हैं, इस आत्मा से भिन्न नहीं हैं। जो आत्मा रत्नत्रयरूप से परिणमित हुआ, वह आत्मा ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। निजात्मा की ओर झुकाव करके जो प्रतीति-ज्ञान और रमणता हुई, वही मोक्षमार्ग है।

मोक्ष को प्राप्त ऐसे भगवान अरहन्त परमात्मा ने तो ऐसा मोक्षमार्ग कहा है। यह बात समझकर अन्तर में परिणमन करना योग्य है। अन्तरंग में प्रथम विश्वास आना चाहिये। एकसमय में तीनकाल तीनलोक के ज्ञाता सर्वज्ञ हैं ह्न ऐसी भी जिसे प्रतीति न हो उसे तो आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-रमणता हो ही नहीं सकती ।

यहाँ तो टीकाकार कहते हैं कि जिन सर्वज्ञ भगवन्तों ने मोक्ष पाया है, उन्होंने यह बात कही है। उन्होंने ऐसे मोक्षमार्ग से मोक्ष को प्राप्त किया है और उन्होंने ही ऐसा मोक्ष का उपाय कहा है। राग तो परमार्थत: आत्मा से भिन्न वस्तु है, उसको भगवान ने मोक्षमार्ग नहीं कहा। अन्दर में चैतन्य स्वभाव की रागरहित श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र ही रत्नत्रय है और ऐसे रत्नत्रयरूप से परिणमित आत्मा मोक्ष का कारण है। जो सिद्ध हो गये, उनके तो वाणी ही नहीं होती; परन्तु जिन्होंने केवलज्ञान प्रकट करके महाआनन्दरूप भावमोक्ष पाया है - ऐसे श्री तीर्थंकर भगवन्तों ने यह मोक्ष का उपाय कहा है।

अब वीतराग कथित ऐसे मोक्ष के उपाय को जानकर जीव को क्या करना ? तो कहते हैं कि यह जानकर जो जीव माता के उदर में पुन: नहीं आता वह भव्य है। मुनि को अपनी मोक्षदशा एकदम निकट वर्तती है, एकाध भव बीच में रह गया है, उसका नकार करते हैं। ऐसे सर्वज्ञकथित मोक्ष का उपाय जानकर जो जीव माता के उदर में फिर से नहीं आते वे भव्य हैं। हमने तो ऐसा मोक्षमार्ग जान लिया है और हम फिर से माता के उदर में आनेवाले नहीं हैं, अब हमको विशेष भव नहीं हैं। जो ऐसे मोक्षमार्ग का निर्णय कर लेते हैं, उन्हें भी विशेष भव नहीं होते।

देखों तो सही; अन्तर के उत्साह को। यहाँ तो कहते हैं कि जो जीव ऐसा समझ कर पुन: नवीन माता के पेट में अवतरित नहीं होता, उसे हम भव्य कहते हैं।

यहाँ साधारण भव्य की बात नहीं ली; किन्तु जिसने अन्दर में चैतन्य का निर्णय करके अवतार का नाश किया है, जो जीव अल्पकाल में मोक्ष जानेवाला है, उसे हम भव्य कहते हैं। भगवान ने जो शुद्ध मोक्षमार्ग कहा है वैसे मोक्षमार्ग को जानो तो सही ! अन्दर चैतन्यस्वभावी कारण-परमात्मा विराजमान है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान-रमणता ही मोक्ष का उपाय है; ऐसा प्रथम निर्णय तो करो। ऐसा निर्णय जो करेगा, वह भी अल्पकाल में मोक्ष प्राप्त करेगा।

आत्मा का भरोसा करो, आत्मा को छोड़कर पर के भरोसे में भूल रहे हो। मनुष्य अवतार मिला और वीतराग के मत में आए तो वीतराग-सर्वज्ञ मोक्ष का क्या उपाय बताते हैं, वह तो सुनो और अन्तर में समझो।

जो जीव ऐसे मोक्षमार्ग को जानता है, वह जीव पुन: दूसरी माता की कुक्षि में गर्भ धारण नहीं करता; क्योंकि जिस वस्तु के स्वभाव में भव नहीं; ऐसी वस्तु का भरोसा करे और भव की शंका बनी रहे, यह संभव नहीं। वस्तु में भव नहीं और उस वस्तु की श्रद्धा ज्ञान करनेवाले को भी विशेष भव नहीं रहते। इसलिये कहा कि जो जीव भगवान का यह उपदेश जानते हैं, वे नवीन माता के उदर में नहीं आते। वीतराग की ऐसी अनेकान्त नीति है कि चैतन्यस्वभाव में विकार नहीं और विकार में स्वभाव नहीं। ऐसी अनेकान्त नीति को जानकर चैतन्य की श्रद्धा-ज्ञान और रमणता प्रकट करके भव्य जीव नई माता के उदर में अवतरित नहीं होते। ✲

अपनी पात्रता का विचार कर !

समय से पहले और भाग्य से अधिक कभी किसी को कुछ नहीं मिलता। जब ऋषभदेव की आहार प्राप्ति की उपादानगत योग्यता पक गई तो आहार देनेवालों को भी जातिस्मरण हो गया। इससे तो यही सिद्ध होता है कि जब अपनी अन्तर से तैयारी हो तो निमित्त तो हाजिर ही रहता है, पर जब हमारी पात्रता ही न पके तो निमित्त भी नहीं मिलते। उपादानगत योग्यता और निमित्तों का सहज ऐसा ही संयोग है। अत: निमित्त को दोष देना ठीक नहीं है, अपनी पात्रता का विचार करना ही कल्याणकारी है।

ह्न पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, पृष्ठ-58

शक्तियों का संग्रहालय : भगवान आत्मा

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम समयसार नामक ग्रन्थाधिराज पर परमपूज्य आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने 'आत्मख्याति' नामक संस्कृत टीका लिखी है। उसके अन्त में परिशिष्ट के रूप में अनेकान्त का विस्तृत वर्णन करते हुये आत्मा की 47 शक्तियों का वर्णन किया है, साथ ही अनेक कलश भी लिखे हैं। उन पर गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने समय-समय पर अतिमहत्त्वपूर्ण प्रवचन किये हैं, जो पाठकों के लाभार्थ क्रमश: प्रस्तुत हैं।

(गतांक से आगे .....)

अहा ! स्वयं 'स्व' का आश्रय करे तो ही वास्तविक या निश्चय धर्म हो और इसी धर्म से मुक्तिहोती है। 'स्व' के आश्रय में व्यवहार की उपेक्षा ही होती है। प्रमाणज्ञान में दोनों का अर्थात् द्रव्य-पर्याय का ज्ञान वर्तता है; परन्तु आश्रय तो एक स्वद्रव्य का ही होता है तथा उसमें व्यवहार की उपेक्षा ही होती है। यही व्यवहार की सापेक्षता है।

यहाँ कहते हैं कि - मोक्षमार्ग में (उपाय में) और मोक्ष में (उपेय में) ज्ञानमात्र का अर्थात् आत्मा का ही अनन्यपना है। व्यवहार (राग) तो इससे भिन्न ही रह जाता है। जब ऐसा है तो फिर वहाँ राग की क्या अपेक्षा ? अहा ! अपना आत्मा स्वयं शुद्ध चिदानन्दघन प्रभु है और इसके आश्रय से जो राग रहित वीतरागी निर्मल रत्नत्रय की आनन्दमयदशा प्रगट होती है, वह उपाय है तथा जब इस उपाय की परिणति अति उग्र होकर परम प्रकर्षता को प्राप्तकर उपेयरूप होती है, तब आत्मा स्वयं ही सिद्धपने को प्राप्त कर लेता है। इसतरह ये दोनों (उपाय व उपेय) एक जीव की ही निर्मल एवं पूर्णनिर्मल अवस्थायें हैं।

प्रश्न : यह ठीक है; परन्तु इनका कोई साधन तो होगा न ?

उत्तर : साधनगुण से आत्मा स्वयं साधनरूप होकर साधकपने और सिद्धपने परिणमता है। जब साधन वस्तु की ही शक्तिहै तो वहाँ अन्य साधनों की क्या अपेक्षा है ?

इसप्रकार उपाय और उपेय में आत्मा का अनन्यपना है, उसमें राग अनन्य नहीं है। इसलिए कहते हैं कि - सदा ही अस्खलित, अचलित चैतन्यमूर्ति प्रभु

आत्मा के निष्कम्प ग्रहण करने से निर्विकल्प ज्ञान की परिणति में तत्काल ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। व्यवहार का लक्ष्य छोड़कर जो एक ज्ञायक के लक्ष्य से परिणमता है, उसको धर्म की प्रथम सीढ़ी अर्थात् सम्यग्दर्शन होता है।

पुरुषार्थसिद्धयुपाय में आता है कि - मोक्ष का उपाय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रा बन्ध का कारण नहीं है। बन्ध का कारण तो योग व कषाय है। जो तीर्थंकर प्रकृति बंधती है, वह भी योग व कषाय से ही बंधती है।

यद्यपि शास्त्र में ऐसा भी कहा है कि समकिती का सम्यग्दर्शन देवायु के बन्ध का कारण है - सो वह व्यवहारनय का कथन है। ज्ञानी नय के स्वरूप को भलीप्रकार जानता है, इसकारण उसे इस कथन से कोई विरोध नहीं आता।

इसीप्रकार और भी कथन हैं - जैसे कि जाति-स्मरण से, देव-शास्त्र-गुरु से, जिनबिम्बदर्शन से, सम्यग्दर्शन होता है - इन सब कथनों का अभिप्राय यह है कि सम्यग्दर्शन प्राप्त होते समय किसके ऊपर लक्ष्य था ? किस शुभ निमित्त से लक्ष्य हटाकर आत्मानुभूति में प्रवृत्त हुआ। ये सब कथन निमित्त की मुख्यता से किए गये कथन हैं - ऐसा ज्ञानी बराबर जानते हैं; अतः वे भ्रमित नहीं होते। वस्तुतः तो स्वद्रव्य के आश्रय से ही समकित होता है।

आगे कहते हैं कि - सम्यग्दर्शन प्राप्त होने के बाद स्वरूप में नित्य केलि करते हुए आत्मार्थी सिद्धपद का पात्रा बन जाता है। जिसने सम्यग्दर्शनरूपी धर्म की ध्वजा हाथ में ली है, वह ज्ञानानन्दस्वरूप में मस्ती करते हुए स्वयं से क्रमरूप व अक्रमरूप प्रवर्तन करते हुए सिद्धभाव का भाजन बनता है।

देखो, यह है स्वाश्रय का कमाल। स्वाश्रय से ही साधकपना एवं स्वाश्रय से ही साध्यपना - सिद्धपद प्राप्त होता है। यह सम्यक् एकान्त है। शुद्ध-चिदानन्द प्रभु - भगवान आत्मा की अन्तर एकाग्रता मार्ग है, इसमें द्रव्यान्तर का स्पर्श नहीं है। इसप्रकार उपाय व उपेय की बात हुई।

अब कहते हैं कि जो ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि अनन्तधर्ममय त्रिकाली ध्रुव निज ज्ञानानन्दस्वरूप को प्राप्त नही करते, वे अज्ञान में वर्तन करनेवाले हैं। ज्ञानमात्रा भाव के अभावस्वरूप परिणमन करनेवाले वे मूढ जीव सदा अज्ञानरूप ही वर्तते हैं।

अहा ! स्वरूप की दृष्टि बिना अज्ञानी जीव अकेले राग के रंग में रंगा रहता है। दया, दान, व्रत, तप आदि राग की क्रियाओं में रचा-पचा रहता है। उसके मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रा का ही आचरण है, उसे धर्म की क्रिया का

तो भान ही नहीं है; अतः वह चार गति में ही परिभ्रमण करता है।

अब इसी अर्थ को 266 वें कलश में कहते हैं -

(वसंततिलका)

ये ज्ञानमात्रनिजभावमयीमकम्पां भूमिं श्रयंति कथमपनीतमोहाः।
तेसाधकत्वमधिगम्य भवंतिसिद्धा मूढास्त्वमूमनुपलभ्य परिभ्रमंति।।

(वसंततिलका)

रे ज्ञानमात्र निज भाव अकंपभूमि को प्राप्त करते जो अपनीतमोही।
साधकपने को पा वे सिद्ध होत, अर अज्ञ इसके बिना परिभ्रमण करते।।

भाई ! अनादिकाल से एक यही मुक्ति का मार्ग है। समयसार गाथा 11 में कहा है - जो भूतार्थ का आश्रय करता है, वही सम्यग्दृष्टि होता है। जिस पुरुष के अन्तःपुरुषार्थ द्वारा मोह का नाश हुआ है, जो पुरुष ज्ञानमात्रा , अंकप, निश्चल एवं ज्ञायकभाव का आश्रय करता है, वह साधकदशा को प्राप्तकर उसकी उत्कृष्टदशारूप सिद्धपद को प्राप्त करता है।

भाई ! दया पालना, व्रत करना, भक्ति करना, आहारदान देना आदि कोरी शुभ क्रियायें मोक्षमार्ग नहीं हैं तथा ये मोक्षमार्ग की अवलम्बन भी नहीं हैं। अशुभ से बचने के लिए ज्ञानी को भी ये सब शुभभाव आते हैं; परन्तु ये धर्म नहीं हैं।

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ राग के विकल्प से रहित अपने स्वभाव से ज्ञात होनेवाला प्रत्यक्ष ज्ञाता है। प्रवचनसार गाथा 172 में अलिंगग्रहण के प्रथम छह बोलों में आता है कि -

1. जो इन्द्रियों द्वारा ग्रहण हो, जानने में आये भगवान आत्मा ऐसा नहीं है।

2. जो इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य-जानने योग्य हो - ऐसा इन्द्रिय प्रत्यक्ष का आत्मा विषय नहीं है।

3. इन्द्रिय प्रत्यक्षपूर्वक आत्मा अनुमान का विषय नहीं है।

4. दूसरों के द्वारा अनुमान से ही जिसका ग्रहण हो - ऐसा आत्मा नहीं है।

5. आत्मा अकेला अनुमान द्वारा जाने - ऐसा अनुमाता नहीं है।

6. आत्मा अपने स्वभाव से जाने - ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है।

अहा ! भगवान आत्मा का परोक्ष रहने का स्वभाव नहीं है; इसकारण भगवान आत्मा का अस्तिपने जो अतीन्द्रिय पूर्ण स्वरूप है - जो उसका आश्रय करता है, वह साधकपने को प्राप्त होकर सिद्ध हो जाता है। (क्रमशः)

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : पर्याय द्रव्य को तन्मय होकर जानती है अथवा अतन्मय रहकर जानती है ?

उत्तर : पर्याय अतन्मय रहकर द्रव्य को जानती है। पर्याय द्रव्य में तन्मय होती है, यह तो जब पर्याय द्रव्य के सन्मुख होती है, तब तन्मय हुई – ऐसा कहने में आता है। अज्ञानदशा में राग के सन्मुख पर्याय थी, इसलिए उससमय उसे राग से तन्मय कहा जाता है और जब पर्याय द्रव्य के सन्मुख हुई तो उसे द्रव्य से तन्मय कहा जाता है; किन्तु तन्मय का अर्थ पर्याय द्रव्य में मिलकर एक हो जाती है – ऐसा नहीं है। पर्याय तो पर्याय में रहकर द्रव्य को जानती है। पर्याय, पर्याय से है और द्रव्य, द्रव्य से है। परद्रव्य से भिन्नता सिद्ध करनी हो तब ऐसा कहते हैं कि पर्याय से द्रव्य जुदा नहीं है, किन्तु जब एक वस्तु के दो धर्म सिद्ध करने हों तो पर्याय से द्रव्य भिन्न है – ऐसा समझना। जब जिस अपेक्षा से कहने का जो आशय हो उसे यथायोग्य समझना चाहिये।

प्रश्न : पर्याय को परद्रव्य की अपेक्षा नहीं है, यह तो ठीक है। क्या पर्याय को स्वद्रव्य की अपेक्षा भी नहीं ?

उत्तर : छहों द्रव्य की पर्यायें जिससमय होनी हैं, वे पर्यायें षट्कारक की क्रिया से स्वतन्त्रतया अपने जन्मक्षण में होती हैं। उन्हें अन्यद्रव्य की तो अपेक्षा बिल्कुल है ही नहीं और वास्तव में देखा जाय तो उन्हें स्वद्रव्य की भी अपेक्षा नहीं है। प्रत्येक द्रव्य में पर्याय का जो जन्मक्षण है, उसी जन्मक्षण में क्रमबद्धपर्याय होती है। ऐसी स्वतन्त्रता की बात जगत की प्रतीति में आना कठिन है।

प्रश्न : द्रव्य में पर्याय नहीं है तो फिर पर्याय को गौण क्यों कराया जाता है?

उत्तर : द्रव्य में पर्याय नहीं है; जो वर्तमान प्रकट पर्याय है – वह पर्याय, पर्याय में है। सर्वथा पर्याय है ही नहीं – ऐसा नहीं है। पर्याय है उसकी उपेक्षा करके, गौण करके, है नहीं – ऐसा कहकर, पर्याय का लक्ष छुड़ाकर; द्रव्य का लक्ष और दृष्टि कराने का प्रयोजन है। इसलिये द्रव्य को मुख्य करके, भूतार्थ कहकर उसकी दृष्टि कराई है और पर्याय की उपेक्षा करके, गौण करके, पर्याय नहीं है, असत्यार्थ है – ऐसा कहकर उसका लक्ष छुड़ाया है। यदि पर्याय सर्वथा ही न होवे तो उसके गौण करने का प्रश्न ही कहाँ से हो ?

पहले वस्तु का अस्तित्व स्वीकार करके ही उसकी गौणता बन सकती है। इसप्रकार द्रव्य और पर्याय दोनों मिलकर ही पूर्ण द्रव्य कहलाता है और वह प्रमाणज्ञान का विषय है।

प्रश्न : शास्त्र में कहीं तो आता है कि पर्याय का उत्पादक द्रव्य है और कहीं आता है कि पर्याय स्वयं सत् है उसे द्रव्य की अपेक्षा नहीं, सो किसप्रकार है ह्न समझाइये ?

उत्तर : वास्तव में पर्याय पर्याय से ही अर्थात् अपने से ही है। उसे पर की अपेक्षा तो है ही नहीं और वास्तव में अपने द्रव्य की भी अपेक्षा पर्याय को नहीं है। जब पर्याय की उत्पत्ति सिद्ध करनी हो तो 'द्रव्य से पर्याय उत्पन्न हुई' – ऐसा कहा जाता है, किन्तु जब पर्याय 'है' – इसप्रकार उसकी अस्ति सिद्ध करनी हो तब पर्याय है वह अपने से सत्रूप है, है, और है, उसको द्रव्य की भी अपेक्षा नहीं। अत: जहाँ जो अपेक्षा सिद्ध करनी हो, वहाँ वही अर्थ निकालना चाहिये।

प्रश्न : पर्याय द्रव्य से भिन्न है तो अनुभूति है, वही आत्मा है – ऐसा क्यों कहा जाता है ?

उत्तर : अनुभूति की पर्याय में आत्मद्रव्य का ज्ञान आ जाता है, द्रव्य का सामर्थ्य पर्याय में आ जाता है। जितना द्रव्य का सामर्थ्य है, वह पर्याय में जानने में आ जाता है – इस अपेक्षा से अनुभूति की पर्याय है, वही आत्मा है – ऐसा कहा है। यदि ध्रुवद्रव्य क्षणिक पर्याय में आ जावे तो द्रव्य का नाश हो जाये, अत: द्रव्य पर्याय में आता नहीं, अपितु द्रव्य का ज्ञान पर्याय में आ जाता है; इसलिये अनुभूति को आत्मा कहा है। **(क्रमश:)**

महावीर जयन्ती समारोह सानन्द सम्पन्न

1.जयपुर (राज.) : यहाँ श्री टोडरमल स्मारक भवन में दिनांक 3 अप्रैल, 2004 को महावीर जयन्ती का शुभारंभ ध्वजारोहण से किया गया। तत्पश्चात् पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल का विशेष व्याख्यान हुआ। समस्त विद्यार्थियों द्वारा सामूहिक जिनेन्द्र पूजन की गई।

रात्रि में श्री टोडरमल महिला मण्डल, बापूनगर की ओर से ज्ञानवर्धक महावीर ज्ञानपहेली एवं अक्षयनिधि का आयोजन किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षाद्वय श्रीमती कमलाजी भारिल्ल एवं श्रीमती कंचनदेवी गंगवाल थी। अक्षयनिधि कार्यक्रम का संयोजन श्रीमती शशीजी तोतूका ने किया एवं ज्ञानपहेली कार्यक्रम का संयोजन श्रीमती सुशीलाजी जैन ने किया। कार्यक्रम का संचालन श्रीमती राजकुमारीजी जैन ने किया।

2. जयपुर : राजस्थान जैन सभा के तत्त्वावधान में महावीरजयन्ती के अवसर पर त्रिदिवसीय कार्यक्रमों काआयोजन किया गया; जिसमें दिनांक 1 अप्रैल को राजस्थान चैम्बर भवन में **भगवान महावीर के सिद्धान्त अनेकान्त एवं उसकी कथन शैली स्याद्वाद आज भी परम उपयोगी है** विषय पर एक विचारगोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी के अध्यक्ष डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल ने अपने उद्बोधन में अनेकान्त एवं स्याद्वाद के गहन पहलुओं पर प्रकाश डाला। मुख्यवक्ता श्री महावीर राजजी गेलडा एवं श्री मुकेश जैन (आई.पी.एस., पासपोर्ट अधिकारी) जयपुर थे।

दिनांक 2 अप्रैल को प्रभात फेरी निकाली गई। 3 अप्रैल को प्रात: विशाल शोभायात्रा के उपरान्त आयोजित सभा में मुख्यअतिथि के रूप में पधारे राजस्थान के राज्यपाल श्री मदनलालजी खुराना ने अपने उद्बोधन में कहा कि मुझ पर जैनों का अत्यन्त उपकार है। बचपन में ही वर्णीजी के सान्निध्य में मैंने सिगरेट, शराब एवं मांस आदि का त्याग किया था, जैनत्व के इन्हीं संस्कारों के फलस्वरूप मैं आज इस मुकाम पर हूँ।

अहिंसा चैनल पर डॉ. भारिल्ल : प्रात: 7 बजे

अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, जयपुर के प्रवचन विगत 5 माह से प्रतिदिन प्रात: 8.30 से 9 बजे तक अहिंसा चैनल पर प्रसारित हो रहे हैं; किन्तु **अब महावीरजयन्ती के शुभअवसर से डॉ.भारिल्ल के प्रवचनों का प्रसारण प्रात: 7.00 से 7.30 बजे तक किया जा रहा है;** अत: सभी साधर्मीजन समय का ध्यान रखते हुए इन प्रवचनों का लाभ अवश्य लें।

ध्यान रहे, सैटेलाइट जगत में जैनसमाज के धर्मलाभार्थ गाँधी जयन्ति के अवसर पर 2 अक्टूबर, 2003 से अहिंसा चैनल (फ्री टू एयर चैनल) का प्रसारण प्रारंभ हो चुका है, जिसपर जैनधर्म के अहिंसा, शाकाहार, अनेकान्तवाद आदि विविध विषयों पर अनेक संतो, महात्माओं एवं विद्वानों के प्रवचन चल रहे हैं।

ब्र. यशपालजी जैन द्वारा धर्मप्रभावना

भिण्ड (म.प्र.) : यहाँ दिनांक 12 से 26 मार्च 2004 तक ब्र. यशपालजी जैन द्वारा प्रात: एवं रात्रि में दोनो समय प्रारंभ के पाँच गुणस्थान, कर्म की दस अवस्थायें आदि विभिन्न विषयों पर मार्मिक प्रवचन तथा कक्षायें लेकर समाज में अपूर्व धर्मप्रभावना की गई।

दोपहर में पाठशाला के विद्यार्थियों ने तथा समाज के अनेक युवा एवं प्रौढों ने कंठपाठ में विशेष उत्साह दिखाकर अनेक विषयों को कंठस्थ किया फलस्वरूप सभी को दिनांक 25 मार्च को शास्त्र भेंट कर सम्मानित किया गया।

भिण्ड में चल रहें युवा फैडरेशन एवं पाठशाला के कार्यों को देखकर ब्र. यशपालजी ने कहा कि अन्य स्थानों के समान भिण्ड शाखा का कार्य भी अत्यन्त सराहनीय है। अन्त में भिण्ड समाज ने गुणस्थान संबंधी शेष विषय को समझने के लिए ब्र.यशपालजी को पुन: आमन्त्रित किया।

श्री समयसार शिविर सानन्द सम्पन्न

मंगलायतन (अलीगढ़): यहाँ अष्टाह्निका पर्व के शुभअवसर पर दिनांक 2 मार्च से 7 मार्च 2004 तक श्री समयसार शिविर सानन्द सम्पन्न हुआ। जिसमें प्रतिदिन ग्रन्थाधिराज समयसार के आधार से कक्षा, प्रवचन, प्रश्नमंच एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी.प्रवचन भी समयसार ग्रन्थ पर ही हुए।

इस अवसर पर पण्डित कैलाशचन्दजी जैन अलीगढ़, ब्र.जतीशचन्दजी शास्त्री सनावद, पण्डित खेमराजजी जैन इन्दौर, पण्डित राकेशजी शास्त्री नागपुर, पण्डित मनोहरजी मारवडकर नागपुर, ब्र. विनोदजी खेकड़ा, पण्डित अशोकजी लुहाड़िया,पण्डित राकेशजी शास्त्री लोनी, पण्डित अजीतजी शास्त्री अलवर, पण्डित पदमचन्दजी आगरा, पण्डित अनीलजी शास्त्री भिण्ड, श्रीमती स्वर्णलताजी जैन नागपुर आदि के प्रवचन एवं कक्षाओं का लाभ सम्पूर्ण साधर्मी जनों को प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त मंगलायतन के छात्रों द्वारा गोष्ठीयों का आयोजन किया गया।

भगवान ऋषभदेव जन्म जयन्ती समारोह

जयपुर (राज.) : यहाँ दिनांक 14 व 15 मार्च, 2004 को श्री दिग. जैन भट्टारकजी की नसियाँ में राजस्थान जैन सभा के तत्त्वावधान में भगवान ऋषभदेव जन्म जयन्ती समारोह का आयोजन किया गया। इस अवसर पर आयोजित विचारगोष्ठी की अध्यक्षता श्री महावीरप्रसादजी जैन-विधायक ने की। मुख्य वक्ता के रूप में पण्डित रतचन्दजी भारिल्ल ने ऋषभदेव एवं भरत-बाहूबली के सम्बन्ध में गहन चिन्तन प्रस्तुत किया। आपके अतिरिक्त श्री एम. ए. अन्सारी (पूर्व महानिदेशक-जेल) एवं श्री प्रवीणचन्दजी छाबड़ा (वरिष्ठ पत्रकार) ने भी अपने विचार व्यक्त किये। संचालन श्री योगेशजी टोडरका ने किया।

14 मार्च को प्रात: प्रभात फेरी एवं सायंकाल भक्तामर का काव्यपाठ किया गया तथा 15 मार्च को भक्तामर मण्डल विधान का आयोजन भी किया गया। **– महेन्द्रकुमार पाटनी**

जैन समाज को अल्पसंख्यक घोषित न करने से रोष

जयपुर : दिनांक 28 मार्च, 2004 को दिगम्बर जैन नसियां भट्टारकजी में आयोजित विशाल सभा को संबोधित करते हुये अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी के अध्यक्ष श्री एन. के. सेठी, लोकायुक्त श्री मिलापचन्दजी जैन, पूर्व न्यायाधीश श्री जसराजजी चौपड़ा, रिटायर्ड आई. ए. एस. श्री पी.एन. भण्डारी तथा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के महामंत्री डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल ने कहा कि राजस्थान की जैनसमाज को शीघ्र ही अल्पसंख्यक का दर्जा दिया जाना चाहिये, यदि यह दर्जा नहीं दिया गया तो आन्दोलन छेड़ दिया जायेगा; क्योंकि जैनसमाज अल्पसंख्यक दर्जे का वास्तविक हकदार है। जैन समाज को 9 राज्यों - महाराष्ट्र, बिहार, झारखण्ड, मध्यप्रदेश, कर्नाटक, उत्तरांचल, छत्तीसगढ़, उत्तरप्रदेश और पश्चिम बंगाल में धार्मिक अल्पसंख्यक घोषित किया जा चुका है।

उल्लेखनीय है कि राजस्थान में जैनसमाज को अल्पसंख्यक घोषित करने के लिये पिछली कांग्रेस सरकार ने 19 सितम्बर, 2003 को अध्यादेश जारी किया था। जिसकी अवधि 6-7 मार्च, 2004 को पूरी हो गई; किन्तु राज्य में भाजपा की सरकार आने के बाद इसे कानूनी जामा नहीं पहनाया जाने से समाज में असमंजस की स्थिति उत्पन्न हो गई है।

भाजपा के प्रदेश उपाध्यक्ष श्री चन्द्रराजजी सिंघवी ने उसीसमय सार्वजनिक निर्माणमंत्री श्री गुलाबचन्दजी कटारिया एवं मुख्यमंत्रीजी श्रीमती वसुन्धरा राजे सिंधिया से फोन पर बात करके जैनसमाज को विश्वास दिलाया कि उनकी मांग पर सरकार यथाशीघ्र विचार करेगी।

विभिन्न अवसरों पर प्राप्त दान राशियाँ

1. श्री नरेन्द्रकुमारजी जैन कोल्हापुर की ओर से चि. अनिलकुमार के विवाहोपलक्ष्य में 501/- रुपये प्राप्त हुये हैं।

2. श्री हुकमचन्दजी ओंकारलालजी सिंघवी (जैन) की ओर से 251/-रुपये प्राप्त हुये हैं।

3. श्री गोडीचन्दजी भीमराजजी मेहता के देहावसान पर 200/- रुपये प्राप्त हुये हैं।

सभी को धन्यवाद ज्ञापित करते हुये हम आशा करते हैं कि भविष्य में भी इसीतरह आपका सहयोग हमें प्राप्त होता रहेगा। **- प्रबन्ध सम्पादक**

पधारें, अवश्य पधारें ...

श्री नेमीनाथ दि. जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव

कोटा नगर में दिनांक 3 मई से 9 मई, 2004 तक होने जा रहे पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के पावन प्रसंग पर जैनदर्शन के मूर्धन्य विद्वान बाबू जुगलकिशोरजी 'युगल', देश-विदेश में ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल जयपुर आदि अनेक उच्च कोटि के विद्वानों के प्रवचनों का लाभ प्राप्त होगा। सभी साधर्मी बन्धु आयोजन में पधारकर धर्मलाभ लेवें।

कार्यक्रम स्थल : वैद्य दाऊदयाल जोशी औषधालय, कॉमर्स कॉलेज रोड, कोटा फोन:0744-3091328

पाठकों के पत्र ह्न

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के अहिंसा चैनल पर जो प्रवचन प्रसारित हो रहे है तथा आचार्य कुन्दकुन्द के परमागम प्रवचनसार पर जो अनुशीलन प्रारंभ हुआ है, उन्हें देखकर और पढ़कर अनेक पाठकों के पत्र प्राप्त हुए हैं, जिनका संक्षिप्त सार यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है ह्न

वीतराग-विज्ञान ध्रुवस्वभाव की प्राप्ति में कारण

वीतराग-विज्ञान में प्रवचनसार की गाथाओं पर आपका चिंतन अनुशीलन भव्यजीवों को उनके त्रैकालिक ध्रुव सहज-परमात्म स्वभाव एवं वर्तमान ध्रुव शुद्ध ज्ञान चेतनारूप कारणनियम की पहिचान कराके शुद्धचेतना के धनी की अंतर्चेतनारूप कार्यनियम को प्राप्त कराने में निमित्त हैं।

साथ ही इन अंकों में दी जा रही सारी सामग्री यथा ह्न इष्टोपदेश प्रवचन, नियमसार प्रवचन, समयसार परिशिष्ट प्रवचन आदि पठनीय व मननीय है। अध्यात्म के सरोवर में आनन्द प्राप्त करने के लिए चेतना को दैहिक फ्रेम से इतर अपने त्रैकालिक फ्रेम में लाने के लिये दूसरा अन्य कोई उपाय नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'वीतराग-विज्ञान' भव्यजीवों को ध्रुवस्वभाव की निकटता व उसे प्राप्त कराने के लिये ही समर्पित है। **ह्न प्रो. कमलकुमार वैद्य, इन्दौर**

यह अनुशीलन उपकारी होगा।

वीतराग-विज्ञान में प्रवचनसार की गाथाओं पर आपका (डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल) चिंतनात्मक अनुशीलन पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई। आप समर्थरूप से सब विवरण साथ में देकर रुचि बढ़ा देते हैं, जिससे सहज ही आगामी अंक प्राप्त करने की प्रतीक्षा रहती है। यह अनुशीलन बहुत अद्भुत है, ये सब मुमुक्षुओं के लिये उपकारी होगा। **ह्न आनंदीलाल शाह, जलगाँव**

पुण्योदय से आप जैसा गुरु

आदरणीय दादाजी (डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल), आशा है आप स्वस्थ व सानन्द हैं। जिनवाणी माता के प्रति 'अहर्निश सेवामहे' की भावना से आप सेवा हेतु सदा तत्पर रहे हैं और रहते हैं। इधर बीच में कई दिनों से हम अहिंसा चैनल पर आपके प्रवचन रोज सुबह सुनते हैं।

जब स्मारक में थे, तब आपकी वाणी साक्षात् ही सुनते थे। हमें अपने पुराने दिन याद आ जाते हैं और आपके उपकार भी। आज हम जो कुछ भी हैं, वह आपका ही दिया हुआ उपकार है। स्मारक में हमारा पुनर्जन्म हुआ था, हमने पुण्योदय से आप जैसा गुरु पाया है।

आपकी संतुलित और उदार नीति ने तो सदैव मुझे आकर्षित किया है। आपके कई विचारों और नीतियों पर तो हमें भी उस लड़कपन में आपत्ति हुआ करती थी; किन्तु कालान्तर में प्रतीत हुआ कि सदैव आप ही सही थे। टी.वी. पर आपके प्रवचन सुनकर मन नहीं माना; इसलिये प्रत्यक्ष पत्र लिख रहा हूँ। यूं तो इसके पूर्व भी कई बार विचार किया, किन्तु मन ही मन में कई पत्र लिखकर रह गये।

आपका परोक्ष आशीर्वाद भी हमें हमेशा उत्साहित रखता है और लक्ष्य से भ्रमित नहीं होने देता; अत: आपकी कृपा दृष्टि सतत् चाहिये। **ह्न डॉ. अनेकान्त जैन, दिल्ली**

अत्यन्त प्रमोद हो रहा है

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के जून 2003 से वीतराग-विज्ञान में आचार्य कुन्दकुन्द के द्वितीय परमागम प्रवचनसार पर अनुशीलन प्रारंभ हुआ, जिसका हार्द सरलता से समझ में आ रहा है, अत्यन्त प्रमोदभाव हो रहा है।

आपके द्वारा जिनवाणी के हर अंग का जो गंभीर आलोचन हुआ है, वह अनुपम है। मैं आपके सुखद भविष्य की कामना करता हूँ। **ह्न कपूरचन्दजी भायजी**

आचार्य अकलंक शिक्षण संस्थान का शुभारंभ

बांसवाड़ा (राज.) : यहाँ श्री ज्ञायक चेरिटेबल ट्रस्ट द्वारा आचार्य अकलंक शिक्षण संस्थान का शुभारंभ किया गया है। जो भी आत्मार्थी छात्र कक्षा 10 वीं की परीक्षा उत्तीर्णकर 11वीं (कनिष्ठ उपाध्याय) में जैनदर्शन के अध्ययन के इच्छुक हों, उन्हें संस्थान में प्रवेश दिया जायेगा। संस्थान में रहनेवाले छात्रों को राजकीय विद्यालय/महाविद्यालय गनोड़ा के माध्यम से माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान एवं राजस्थान संस्कृति विश्वविद्यालय जयपुर द्वारा 12 वीं (उपाध्याय वरिष्ठ) एवं बी.ए. (शास्त्री) की उपाधि प्रदान की जायेगी। संस्थान द्वारा छात्रों को आवास, भोजन एवं विद्यालय आने-जाने की सुविधा नि:शुल्क प्रदान की जायेगी; साथ ही संस्थान में धार्मिक शिक्षण, संस्कृत, अंग्रेजी, कम्प्यूटर आदि की योग्य शिक्षण व्यवस्था भी दी जायेगी। इस वर्ष कनिष्ठ उपाध्याय कक्षा में मात्र 10 विद्यार्थियों को ही प्रवेश दिया जायेगा।

छात्रों का प्रवेश पात्रता शिविर जून के प्रथम सप्ताह में आयोजित होगा। प्रवेश के इच्छुक छात्र निम्न पते से प्रार्थना-पत्र प्राप्त कर सकते हैं। ह्न राजकुमार जैन, जैनदर्शनाचार्य

आचार्य अकलंक शिक्षण संस्थान, 1/15, खान्दू कॉलोनी, बांसवाड़ा (राज.)
फोन - 02962-248975

ध्यान दें !

इस वर्ष मई माह में लगनेवाला प्रशिक्षण शिविर **दिनांक 9 मई से 26 मई, 2004 तक देवलाली में** तथा अगस्त माह में लगनेवाला शिक्षण-शिविर **दिनांक 8 अगस्त से 17 अगस्त, 2004 तक जयपुर में** लगेगा। साधर्मी बन्धुओं को पधारने हेतु भावभीना आमंत्रण है।

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

04 से 8 मई, 2004	कोटा	पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव
09 से 26 मई, 2004	देवलाली	प्रशिक्षण-शिविर
27 मई से 25 जुलाई, 2004	अमेरिका	धर्म प्रचारार्थ
26 जुलाई से 1 अगस्त, 2004	लंदन	धर्म-प्रचारार्थ
08 से 17 अगस्त, 2004	जयपुर	शिक्षण-शिविर